SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

बौद्ध परम्पराओं में प्राचीन वैशाली एवं कृषि व्यवस्था : एक विश्लेषण (ई.पू. 600–300 ई.)

एस.एस. अली अख्तर, Ph.D., इतिहास
मगध विश्वविद्यालय, बोध गया, बिहार, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Author
एस.एस. अली अख्तर, Ph.D.

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 20/06/2023
Revised on : -----
Accepted on : 27/06/2023
Plagiarism : 03% on 20/06/2023

शोध सार

प्राचीन वैशाली के विकास में कृषि ने सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। छठी शताब्दी ई. पू. में कृषि के क्षेत्र में हुए लोहे के प्रयोग ने भौतिक एवं सामाजिक ढ़ाँचे को ही बदल दिया। कृषि की महत्ता एवं उपयोगिता के कारण ही बुद्ध अपने कार्यक्षेत्र को तत्कालीन कृषि को प्रोत्साहित एवं सुरक्षित करने के लिए उन्नत कृषि हेतु अनिवार्य उन्नत पशुओं के हित में यज्ञ और भोजन में पशु मांस के व्यवहार के कारण होने वाली पशुधन क्षति को रोकते हैं। उन्होंने उनके प्रति अहिंसा पर बल देते हुए कहा कि ''अन्नद, वनद और सुखद'' है।' यर्थात् पशुओं की हत्या नहीं हो। गंगा और गंडक की तटवर्ती वैशाली की कृषिजन्य सामाजिक और आर्थिक संपन्नता ने गौतम बुद्ध को काफी आकर्षित किया।

मुख्य शब्द

पशुधन, कृषि, गणतंत्र, बौद्ध साहित्य, पाणिनी केदार, उदंचन.

भूमिका

बौद्ध परम्परा में वैशाली का विशेष ऐतिहासिक महत्व है। पुरातात्विक एवं साहित्यिक स्त्रोतां से पता चलता है कि वैशाली नगरीय वस्ती के रूप में विकसित होने के पीछे कृषि की देन रही है। आलोच्यकाल में लोहे के फाल, दराँत, फावड़ा आदि के प्रयोग के फलस्वरूप बड़ी तायदाद में कृषि अधिशेष उपलब्ध होने लगे जो पत्थर एवं ताम्बे के उपकरणों से संभव नहीं था। इसने उत्तर पूर्वी भारत में 600 ई.पू. में नगरीय बस्तियों के विकास की पृष्ठभूमि तैयार की। इसमें चम्पा, राजगृह, पाटलिपुत्र, वैशाली, वाराणसी, कौशाम्वी, कुशीनगर तथा श्रावस्ती का समर्थन पालि ग्रंथ पुरात्व दोनों से होता है।[2]

वैशाली की उन्नत कृषि ने ही उसे विश्व के प्रथम गणतंत्र होने का गौरव प्रदान किया। इतिहासकार प्रो. रामशरण शर्मा का मानना है कि विवेच्यकालीन लोगों के भरण–पोषण करने वाली कृषि किसानों के अधिकार में ही थी।[3] वस्तुतः इससे परिवार या व्यक्ति के स्वतंत्र अस्तित्व के लिए आर्थिक परिस्थिति में प्रगति आयी। संभवतः आर्थिक उन्नति ने ही वैशाली गणतंत्र को सुदृढ़ और विकसित होने का मार्ग प्रशस्त किया।

यह उल्लेखनीय है कि वर्त्तमान काल में आलोच्य क्षेत्र में 215 से 55 इंच तक वर्षा होती है।[4] खासकर उत्तर बिहार में अच्छी वारिस होने के कारण फसल अच्छी होती है।[5] इस इलाके में दोमट और जलोढ़ मिट्टी पायी जाती है। स्पेट तथा लियरमंथ द्वारा प्रदर्शित मानचित्र से भी इस क्षेत्र की मिट्टी की श्रेष्ठता प्रमाणित होती है।[6] स्त्रोतों से पता चलता है कि इस काल के किसान पर्यावरण से परिचित थे।

भारतीय कृषक मिट्टी की प्रकृति और उसके आर्थिक महत्व के विशिष्ट धान्योत्पादन की क्षमता के प्रति अतिप्राचीन काल से ही सजग रहे है। किसानों ने समय के इस ऐतिहासिक लम्बे दौड़ में आलोच्यकाल में वैदिक कालीन भू–विभाजन (उर्वर एवं अनुर्वर) के अतिरिक्त फसलों की उपयुक्तता[7] एवं जलसुविधा[8] के आधार पर भी भूमि का विभाजन प्रारम्भ कर दिया। बौद्ध–साहित्य से भी खेतों के प्रकार का पता चलता है– 1. उत्कृष्ट, 2. मध्यश्रेणी के, 3. निम्न श्रेणी के, जंगलों से युक्त तथा उसर[9] खेत्तसुत्त[10] में आठ प्रकार के ऐसे खेतों की चर्चा मिलती है जिनमें अधिक उपज नहीं होती है। ये हैं असमतल, चट्टानों और पत्थरों से युक्त, लवणीय, गहरी जुलाई से हीन, जलनिकासी से हीन, जल अन्तर्गत से हीन, पानी के प्रबंध से हीन तथा मेढ़हीन खेती दूसरी ओर आठ अच्छे प्रकार की खेती में भिन्न विशेषता पायी जाती है। इसमें बीज बड़े पैमाने पर फलते हैं।[11] इसमें जीवन–यापन के गलत सिद्धांतों को अपनाने वाले श्रमण–ब्राह्मण आठ निकृष्ट प्रकार के खेतों से तुलनीय हैं, और जो उचित शिक्षाओं का पालन करते है तथा जीवन–यापन के उचित साधनों को अपनाते हैं, उनकी तुलना आठ उत्कृष्ट कोटि के खेतों से की गई है। इस प्रकार हम देखते हैं कि बुद्ध के काल में कृषि का महत्व इतना बढ़ गया था कि प्रारम्भिक बौद्ध शिक्षाओं में इसको उदाहरण के रूप में व्यवहृत किया जाने लगा था। निश्चिततः इसका श्रेय लौह उपकरणों को जाता है। इतना ही नहीं स्त्रोतों मे खेतो के नाम फसलों के नाम पर भी रखे जाने के प्रमाण मिलते हैं। जैसे– ब्रैहेय, (ब्रीहि का खेत), शालेय (धान का खेत), मौद्गीन (मूंग का खेत), यव्य (जिसमें यव बोय जाए), षाष्ठिसक्य (साठी धानवाला), तैलीन (तिलवाला) तथा अन्य या औमीन अलसी या तीसी का खेत आदि।[12] पतंजलि ने पाणिनी महोदय के अष्टाध्यायी पर टिप्पणी करते हुए कहा है कि खेत में पड़नेवाले बीज की मात्रा के आधार पर खेतों के नाम मिलते हैं, जैसे– प्रास्थिक (021/2 पाव), द्रौणिक (10 सेर), खारिक (4 मन)[13] जिस खेत में किसी धान का एक प्रस्थ बीज बोया जाए, उसे प्रास्थिक[14] कहते थे। खारिक और द्रौणिक खेतों के नाम का भी यही आधार था।[15]

पाणिनी ने सामान्य भूमि श्रेणी में कृषि योग्य समस्त भूमि को साधारणतः कर्ष कहा है।[16] फिर हल से जोती जाने वाली प्रत्येक भूमि को हत्या[17] तथा प्रत्येक जुते हुए खेत को सीत्य[18] कहा है। पतंजलि ने हल्य भूमि के अतिरिक्त 'परमाहल्या' का भी उल्लेख किया है, जो अवश्य ही इससे बड़े क्षेत्रफल को होना चाहिए।[19] हल्यभूमि शुनः सीरीय भी कही जाती थी।[20] यह भूमि क्षेत्रों में विभक्त थी, जिनमें विभिन्न प्रकार के फसलें बोयी जाती थी,[21] इस प्रकार क्षेत्र या खेत उर्वर भूमि था।[22] स्त्रोतों में खेती को ''केदार'' भी कहा गया है, जिससे कालान्तर में क्यारी शब्द बना।[23]

विवेच्यकालीन स्त्रोतों में हल्यभूमि के अतिरिक्त अहल्यभूमि की चर्चा भी है। पाणिनी एवं बौद्ध–साहित्य में इसके अन्तर्गत ऊसर, बंजर, चारागाह, गोष्ठ, गाँव आदि का उल्लेख मिलता है। मनु एवं कौटिल्य से भी इसकी पुष्टि होती है।[25] इस प्रकार की भूमि में कृषि नहीं की जाती थी।

प्राचीन वैशाली में होनेवाली फसलों को हम दो भागों में बाँट सकते हैं–(1) प्राकृतिक फसल तथा (2) कृत्रिम फसल।[26]

1. प्राकृतिक फसल के अन्तर्गत बिना जुती भूमि अर्थात् जंगल में अपने–आप तैयार होनेवाली सभी वस्तुएँ आएंगी जो मानवोपयोगी होती है (आर्थिक लाभ की सभी चीजें)। महाकाव्यों[27] और बौद्धग्रंथों[28] आदि का वर्णन से हमें जंगल में स्वयमेव उत्पन्न होने वाले अनेकानेक धान्यों, कन्दमूल, फलों एवं औषधियों का वर्णन मिलता है।

याज्ञवल्क्य के अनुसार इनसे तपस्वियों एवं साधु–पूरूषों के अतिरिक्त गृहस्थों का एक वर्ग भी अपनी जीविका चलाता था।[29]

2. कृत्रिम फसल– इसके अन्तर्गत वे सभी फसलें आती है, जिनके लिए मानव प्रयास अपेक्षित है, यथा शालि, ब्रीहि, यव, तिल, अलसी, स, गन्न, फल, शाक सब्जियाँ आदि।[30]

प्राचीन काल से ही वैशाली में शालि की खेती होती थी। शालि बड़ी जाति का धान होता था। वैदिकाल से आलोच्यकाल में उत्पादन की शक्तियों में भिन्न्ता धान की रोपाई से भी स्पष्ट होती है। प्रारंभिक पालि ग्रंथों में धान के पौधों की रोपाई के शब्द मिलते है।[33] वर्षा ऋतु की फसल के रूप में वैदिक शब्द ''ब्रीहि'' तथा शरद–ऋतु की फसल के रूप में वैदिकोत्तर शब्द ''शालि'' के मध्य अन्तर को रेखांकित किया है। यह सुझाव उचित प्रतीत होता है कि 'ब्रीहि' बिना रोपाई के उत्पन्न किया जाता था और ''शालि'' रोपाई से उपजाया जाता था।[35] रोपाई के लिए खेत तैयार करना इतना महत्वपूर्ण बनाया कि इससे सम्बद्ध कहानियाँ बन गई। कालान्तर की शालिकेदार जातक नाम से बुद्ध के जन्म की कथा हमें उपलब्ध है।[36]

''रोपेति'' शब्द रोपाई का द्योतक है। आज भी प्राचीन ''रोपनी'' शब्द इसका पूरक है, इसके अतिरिक्त हमारे पस पालि–अभिव्यक्ति ''बिजनिपतिट्ठापेति''[37] है, जिसका स्पष्ट तात्पर्य पौधों की रोपाई है। ''पतिट्ठापेति'' शब्द रोपाई का द्योतक हो सकता है।[38] यहाँ ध्यान देने योग्य है कि आज भी वैशाली क्षेत्र में रोपनी के लिए निमित्त पौधों के लिए ''बिया'' शब्द प्रयुक्त होता है जो कि ''विजनी'' का पूरक है। वैशाली क्षेत्र में इसी प्रक्रिया के लिए प्रचलित ''बिठौनी'' शब्द इसका आधुनिक प्रतिरूप माना जाता है।[39] मेरे अनुमान से वैशाली स्थित ''बिठौली'' गाँव (मुजफ्फरपुर–हाजीपुर रेलमार्ग में वर्तमान हॉल्ट) का नाम 'बिठौनी' शब्द से ही निष्पन्न हो सकता है। इससे प्राचीन वैशाली में धान की रोपाई की लोकप्रियता की व्यापकता का संकेत मिलता है।

जैनग्रंथ ज्ञाताधर्मकथा में धान की रोपाई का विशद् वर्णन किया गया है। चूँकि यह ग्रंथ मगध एवं मिथिला से परिचित है, अतः स्वाभाविक है कि दोनो के मध्य का क्षेत्र वैशाली भी इसके अन्तर्गत आएगा ही। इस कारण शोधार्थी इसका उपयोग वैशाली की कृषि में किया है। इससे हमे सूचना मिलती है कि धन नामक एक समृद्ध व्यापारी की चार में से एक पुत्रवधु रोहिणी[40] की गृहस्थी से सम्बद्ध कृषि–मजदूर भली प्रकार तैयार की गई एक क्यारी[41] मे पाँच अक्षत धान के बीज बोते है। वे दो और तीन बार पौधों की रोपाई करते हैं। (दोच्यम् पितच्यम् उक्खयनिहय करेन्ति) श्रावण में इसकी पौध लगाई जाती है और अग्रहण में इसे काटा जाता है इसीलिए इन्हें पाणिनी ने ''शारदा'' कहा है।[42] यह कहा जा सकता है कि घने खेतों में रोपे गए धान के पौधों को उन्हें दूसरे खेत में पुनः रोपने की प्रथा वैशाली जिले में आज भी प्रचलित हैं।[43] यह प्रथा उन क्षेत्रों में अपनायी जाती है, जहाँ वर्षा अधिक होती है और पानी भर जाता है। जब पानी घट जाता है और भूमि रोपाई के उपयुक्त हो जाती है, तब पहली रोपाई के घने भागों से धान के पौधे उखाड़ लिए जाते है और दूसरे खेतों में पुनः रोप दिए जाते है। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन वैशाली में धान की खेती काफी बड़े पैमाने पर होती थी। महावस्तु से हमें पता चलता है कि वैशाली में 25 प्रकार से अधिक शालि की किस्में उपजाई जाती थी।[44]

यहाँ पर वैशालि शब्द के नामकरण पर भी विचार करना उपयुक्त हो सकता है। यद्यपि परम्परागत धारणानुसार वैशालि नाम राजा विशाल से जुड़ा है, रामशरण शर्मा ने शाल वन की बहुलता की ओर संकेत किया है, किंतु धारणा है कि भारी पैमाने पर शालि के विशिष्ट किस्मों को उपजाने के कारण ही इसका नाम वैशाली पड़ा, जो धीरे धीरे वैशाली बना।

इस प्रकार हम कह सकते है कि प्राचीन वैशालि में शालि की खेती इतनी लोकप्रिय थी कि इस क्षेत्र का नाम भी वैशालि पड़ गया जो आज वैशाली है।

ब्रीहिः प्राचीन स्त्रोतों के विश्लेषण से पता चलता है कि प्राचीन वैशाली के किसान ब्रीहि की भी खेती करते थे। ब्रीहि धान की ही जाति का नाम है जिसे रोपा नहीं जाता है।[45] डी. कैण्डोल एवं लियाल के अनुसार अत्यन्त प्राचीनकाल से ही भारत में ब्रीहि की खेती होती रही। खेतों की उपज में ब्रीहि का स्थान प्रमुख था।[46] ब्रीहि

जनसाधारण का अन्न था। वर्षा ऋतु में ब्रीहि पक जाती थी।[47] ब्रीहि का ही एक भेद षष्ठिक होता था। यह साठ दिनों में तैयार हो जाता था।[48] उसको इस क्षेत्र में आज भी साठी कहा जाता है।

यवः अंगुत्तर निकाय[49] एवं महावस्थ[50] से पता चलता है कि आलोव्यकालीन वैशाली में यद की खेती होती थी। वस्तुतः महत्व एवं उपज की दृष्टि से शालि के बाद यव का ही स्थान हैं। खाने के साथ यज्ञादि यादि में भी व्यवहृत किए जाते थे।[51] यव के सत्तु बनते थे जो तत्कालीन भोजन के महत्वपूर्ण घटक थे। खराब यव को यवानी कहते थे।[52] यवक पव का एक भेद था जो आकार मे छोटा होता था।[54] रबी की सभी फसलों को बोने के बाद यव बोये जाते थे। इन फसलों के अतिरिक्त गेहूँ, तिल, गन्ना, मुद्ग, माप, कुलत्थ, मसूर एवं गर्मूत या मटर सर्वप इत्यादि से भी परिचित लगते है।[53] विवेच्य क्षेत्र के लोग विविध फलदायी वृक्षों के उपयोग से परिचित थे, जैसे– आम, कटहल, जामुन, केला, बेल, सतालू, अनार आदि। निश्चित रूप से इनका उपयोग आर्थिक दृष्टि से लाभदायी रहा होगा।[54] स्त्रोतों में उल्लेख मिलता है कि प्राचीन वैशाली में निम्नलिखित लगभग सभी सब्जियाँ उपजाई जाती थी। सब्जियों में कुम्हड़ा, लौकी, खीरा, ककड़ी, सेम, प्याज एवं मूली का उत्पादन खूब होता था। मसालों में हल्दी, धनिया, जीरा, अदरक, लालमिर्च, लहसून आदि मुख्य थे।[55]

इस प्रकार स्त्रोतों से आलोच्य क्षेत्र में आर्थिक लाभ के लगभग सभी फसलों के उपजाए जाने का पता चलता है।

साहित्यिक एवं पुरातात्विक स्त्रोतों में वैशाली की कृषि से जुड़े यंत्र एवं प्रविधि का वर्णन मिलता है। वैशाली के उत्खननों से जंग लगे लौह–उपकरणों के अवशेष मिले है। यद्यपि इन उपकरणों की पहचान ठीक से नहीं हो सकी है। इसके लिए यहाँ का आर्द्र एवं शोरायुक्त पर्यावरण उत्तरदायी है। वैशाली कहे रघुआसोई गाँव से लोहे का फाल उपलब्ध हुआ है।[56] रामशरण शर्मा इसे छठी से पाँचवी शताब्दी ई. पू. में विकसित लौह धातु अभियांत्रिकी का चिह्न कहते है। उपर्युक्त तथ्यों से इस बात पर प्रकाश पड़ता है कि वैशाली की कृषि में छठी शताब्दी ई. पू. में लौह उपकरणों का प्रयोग खुलकर होने लगा था। इससे प्राचीन वैशाली में वैज्ञानिक एवं तकनीकी खेती पर प्रकाश पड़ता है।

खेत की जुताई हल से ही की जाती है। इसमें लोहे के फाल का प्रयोग होता था।57 हल में बैल का उपयोग किया जाता है। अच्छी जुताई के लिए दो, तीन या चार बार खेत जोतने की प्रथा थी। अच्छी एवं गहरी जुताई के लिए उल्टा हल जोतने की भी प्रथा थी।

निर्धन किसान अपनी ही तरह के दूसरे किसानों से हल साझा कर लेते थे। ऐसी परिस्थिति में कभी–कभी साझेदार के दूरस्थ खेतपर जाकर भी जुताई करनी पड़ती थी। जोतने के बाद खेत की आर्द्रता की रक्षा के लिए कृषक द्वारा खेत की मिट्टी को बराबर कर देते थे। कभी–कभी फावड़ा से भी ढेलों को तोड़कर बराबर किया जाता था।[58] हल के बाद दूसरा प्रमुख कृषि–उपकरण कुदाल था। इसका प्रयोग प्रायः कड़ी मिट्टी को तोड़ने एवं हल से छूटे हुए कोने या किनारे को खोदने के लिए किया जाता था। आलोच्यकालीन स्त्रोतों में हल एवं कुदाल के अतिरिक्त हंसिया, स्तम्वलून, स्तम्बध्ना आदि लौह उपकरणों का भी उल्लेख मिलता है।

सिंचाई कार्य के लिए भी उपकरणों का उल्लेख है। अष्टाध्यायी में चरस या मोट के लिए ''उदंचन'' शब्द आया हैं। कौटिल्य ने फसलों की सिंचाई के लिए एक प्रकार की मशीन का उल्लेख किया है।[59] इस क्रम में रामशरण शर्मा ने हाइड्रोलिक इंजन जैसे मशीन के अस्तित्व की सम्भावना व्यक्त की है।[60] बीज बपन के तीन समय थे और कृषक उपयुक्त ऋतु में उपयुक्त फसलों को बोया करते थे। स्त्रोतों में बोने के पूर्व बीजों के कुछ धार्मिक एवं वैज्ञानिक संस्कार किए जाने की चर्चा मिलती है।

निष्कर्ष

स्त्रोतों के विश्लेषण से पता चलता है कि आलोच्यकालीन किसान कृषि के लगभग सभी तकनीको यथा बाय 'सिंचाई, निराई, रखवाली, उर्वरक, लवन, मड़नी या मर्दन, निष्पाव, भण्डारण आदि से पर्ण परिचित थे तथा इनके वैज्ञानिक तकनीक को व्यवहार में लाते थे। इस प्रकार हम देखते है कि बौद्ध साहित्यों में प्राचीन की कृषि–पद्धति में बहुआयामी व्यापकता, विविधता और गहराई थी।

संदर्भ सूची

1. सुत्तनिपात (वाराणसी संस्करण), ब्राह्मण धम्मिक सुत्तम, 13–13, पृ.74.
2. शर्मा रामशरण, *''प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति एवं सामाजिक संरचनाएँ''*, राजकमल प्रकाशन, 1992, पृ. 175.
3. पूर्वोक्त, पृ. 160.
4. स्पेट ओ.एच.के. तथा लेयर टी. ए., *मंथन इंडिया एंड पाकिस्तान,* तृतीय आवृत्ति, लंदन, 1967, पृ. 564.
5. स्पेट ओ.एच.के. तथा लेयर टी. ए., *इंडिया एंड पाकिस्तान,* तृतीय आवृत्ति, लंदन, 1967, पृ. 564.
6. पूर्वाक्त पृ. 115.
7. गंगोपाध्याय राधारमण, *''ए मेटेरियल फॉर द स्टडी ऑफ एग्रीकल्चर एंड एग्रीकल्यरिस्ट एंश्येंट इंडिया''*, क्वीन स्ट्रीट, सीरामपुर, 1932 पृ. 43–44.
8. *अर्थशास्त्र,* चौखंभा विद्याभवन, वाराणसी, 1962 पृ. 7.11.
9. संयुक्त निकाय, 4, 314–17.
10. अंगुत्तर निकाय, 4.237 तथा आगे.
11. पूर्वोक्त, 237–8, वाराणसी, 1976, पृ. 22.
12. महाभाष्य, पतंजलिकृत, 2.2.1़4.
13. अष्टाध्यायी, 2.1.45.
14. काशिका, 5.1.45.
15. अग्निहोत्री प्रभुदयाल, *''पतंजलिकालीन भारत''*, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना, 1963, पृ. 253.
16. अष्टा 4.4.97.
17. पूर्वोक्त.
18. पूर्वोक्त, 4.4.91.
19. महाभाष्य, 1.1.72, पृ. 454.
20. अष्टा 5.2.1.
21. आपस्तम्ब, 1.11.50.
22. गौतम धर्मसूत्र (अंग्रजी अनुवाद), जे वुलर से. बु. ई., भाग–2, वाराणसी, 1965, 9.40 सुत्तनिपात (हिन्दी अनुवाद), भिक्षु धर्मरक्षिता, वाराणसी, 1977, 524। ललित विस्तर (सम्पा) एस. लेकमैन, हले 1902–8, 280–9, 280–12.
23. शर्मा रामशरण, प्रा.भा. में भौ. प्र. एवं सा. सं., पृ. 144.
24. रामायण, (वाल्मीकि), लक्ष्मी वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, कल्याण, बम्बई, 1935। 4.6.94. अर्थशास्त्र, 224.19, 3.6. 25–28, अग्रवाल वासुदेवशरण, 'पाणिनिकालीन भारतवर्ष', वाराणसी, 1955, पृ. 198.
25. रामायण, 2.42, मनु, 9.54, अर्थ, 2़.21.
26. सिंह, प्रेम कुमार, ''प्राचीन भारतीय कृषि एवं तज्जनित समस्याओं का अध्ययन'', बुक्स इन्टरनेशनल, 1987, पृ 34.
27. जातक, 2.379, पृ 405.
28. रामायण, 3.16.16.
29. याज्ञवल्क्समृति, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, 1949. पंचम संस्करण, 153–54 पृ 90.
30. सिंह, प्रेम कुमार, पूर्वोक्त.

31. शर्मा, रामशरण, प्रा. भा. में भो. तथा सं. सं. पृ. 143.
32. पूर्वोक्त.
33. ''रोपन'' तथा ''रोपेति'' शब्द के अन्तर्गत पा. ई. 1301.
34. वासुदेव शरण अग्रवाल, पूर्वोक्त, पृ.– 204.
35. पूर्वोक्त.
36. शर्मा, रामशरण, पूर्वोक्त, पृ.– 144.
37. अंगुत्तर निकाय, 1, पृ– 239–40.
38. ''पतिटठापेति'' शब्द के अन्तर्गत (दीर्घनिकाय, 1,20, संयुक्तनिकाय, 1, 90) स्थापित करना, प्रतिष्ठित करना, स्थिर करना, में रखा देना, संस्थापित करना, पा. ई. डि..
39. शर्मा, रामशरण, पूर्वोक्त.
40. रोहिणी नाम महत्वपूर्ण है, क्योंकि इस नक्षत्र में गंगा के तटवर्ती क्षेत्रों में बोआई प्रारंभ होती है।
41. नायाधम्मकहाओ, 68, पृ. 86.
42. पूर्वोक्त.
43. शर्मा, रामशरण, पूर्वोक्त.
44. महावस्तु, 1.245.
45. वासुदेव शरण अग्रवाल.
46. महाभाष्य, अग्निहोत्री, प्रभुदयाल, पर, पृ.– 260.
47. अग्रवाल, वा. श. पूर्वोक्त.
48. अष्टा, 5.1.90.
49. अगुत्तरनिकाय, 11.49–51.
50. महावस्तु, 2.84.
51. बौधायन धर्मसूत्र, 3.6.5.
52. महाभाष्य, ३.2.24 पृ. 214.
53. सुत्तनिपात के कोकालिक सुत्त के गद्यांश श्रौत सूत्रों में जौ, चावल, तिल, कोदो, ज्वार, गेहूँ, सरसों तथा इस प्रकार की फलियाँ जैसे–मृदुग, भाष, कुलत्थ आदि का उल्लेख है। रामगोपाल, इंडिया ऑफ वैदिक कल्पसूत्राज, दिल्ली, 1959, पृ–134
54. राहुल सांस्कृत्यायन, *''मध्य एशिया का इतिहास'',* किताब महल, पृ. 201–5.
55. जातक, 474, जातक 6.536, गौतम, 17.32.
56. आई. ए. आर. 1974–75 की अप्रकाशित सामग्री भारतीय सर्वेक्षणा के सौजन्य से प्राप्त सामग्री
57. रामायण 2.32.29, अंतरंजीखेड़ा और कौशाम्बी उत्खननों से यह तिथि 1900 ई. पू. के लगभग सिद्ध होती है.
58. जातक, 2, प्– 59 तथा पृ.– 68.
59. अष्टा, 3.3.123.
60. शर्मा, रामशरण, ''प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति एवं सामाजिक संरचनाएँ'', राजकमल प्रकाशन 1992, पृ. –177.

****